❀ श्रीश्री गुरुगौराङ्गौ जयतः ❀

# सहजिया-दलन

## प्रथम-खंड

संकलनकर्ता
और
प्रकाशक—
श्रीव्रजकिशोर मुखोपाध्याय

* श्रीश्री गुरु गौरांगौ जयतः *

# सहजिया--दलन

—प्रथम-खंड—

संकलित और प्रकाशक-

श्री ब्रजकिशोर मुखोपाध्याय

प्रथमवार-१००० ] [ मूल्य-।=)

देशीय सहजियों के प्रति प्रजूज्य है। विशेषतः राधाकुण्ड, गोवर्द्धन मथुरा, वृन्दावन प्रभृति स्थानों में इसका अधिक प्रचार होना आवश्यक है, इसलिए इस ग्रन्थ को हिन्दी भाषा में अनुवाद करके प्रकाशित कर रहा हूँ।

समस्त भारत वर्ष में "श्री ब्रह्म, रुद्र और सनक" चार ही विशुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय हैं। सहजिया आदि बहुत से अपसम्प्रदाय गण हैं। शास्त्र कहते हैं-"सम्प्रदाय विहीण ये मन्त्रास्ते विफला मता" इस बात की रक्षा के लिये समस्त अपसम्प्रदाय अपने को व्यासोक्त उक्त चार सम्प्रदायों में गण्य होने के लिए चेष्टा कर रहे हैं। प्रकृत प्रस्ताव से चतुः सम्प्रदाय के वैष्णवों को इस विषयपर सावधानहोना प्रयोजन हैकि जिससे आऊल, बाउल, कर्ताभाजा, नेड़ा, दबेश, साँई, अतिवाड़ी गोपीसारी, गौरांगना रारी, स्मार्त, जात गुसाँई, प्रभृति मातायुक्त बाबाजी का दल विशुद्ध ब्रह्म माध्व गौड़ीय सम्प्रदाय में प्रवेश न कर सकें, उसके लिये सभी विशुद्ध वैष्णवों को यत्न करना विशेष प्रयोजन हैं। मैं ने उसी उद्देश्य को लेकर यह "सहजिया दलन" ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा हूँ।

श्री गौड़ीय पत्रिका के कतृ पक्ष गण हिन्दी भाषा में भी उक्त पत्रिका प्रकाशन करने के लिए इच्छा प्रकट किये हैं। आप सबों को अति शीघ्र ही प्राप्त होने की सम्भावना है। मैं ने जगत जीव और सर्व साधारण की मंगल कामना के लिए इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया है। इसमें निरापेक्ष्य धर्म पिपाशु गण उपकृत होने से मेरा श्रम स्वार्थक होगा। जो लोग सरल दोषी व्यक्ति हों वे लोग इस ग्रन्थ को पाठ करके सत् मार्ग का संधान पायेंगे यही मेरा विश्वास है।

—प्रकाशक

# सहजिया मत का हेयत्व

श्री हट्टदेश का कोई भक्त जिज्ञासु होकर हम लोगों से तीन प्रश्न करनेसे हम लोगोंने उन्हें जो उत्तर लिखा है। नीचे उसे लिख रहे हैं आशा करते हैं कि इसे पढ़ने से बहुतों का सुज्ञान उदय होगा।

आपके पत्र के तीन प्रश्न प्राप्त हुए। प्रश्न तीनों के अलग अलग करके उत्तर लिख रहा हूँ, विशेष विवेचना पूर्वक पाठ करेंगे। जो लोग कदर्ज (खराब) मत का विश्वास करते हैं। उन लोगों को शीघ्र ही न दिखावेंगे। वे लोग श्रीमन् महाप्रभु के साधु उपदेश व साधु चरित्रों का विकार सृजन करते हुए उनके आश्रय में परमार्थ को जलान्जली दिया करते हैं। श्रीमहाप्रभु के विचारसे जड़ेन्द्रिय के सम्बन्ध में विशेष सतर्क रहने का कर्तव्य है। जीव की सिद्ध देह ही चिन्मय है। चिन्मय देह की चिन्मय इन्द्रियां सब कृष्ण सेवा को उपयोगी हैं।

**प्रथम प्रश्न का उत्तर**—बंग देश में बहुत से स्थानों में सहजिया कह कर एक घृणीत मत भीतर भीतर (चुपके चुपके) चल रहा है। उस मत के कार्य सब अत्यन्त घृणित हेय हैं। सहज धर्म कह कर जो शास्त्र में उक्ति है वह अलग है। जीवों का चिनमय कृष्ण सेवाही सहज चिन्मय धर्म है। यद्यपि यह धर्म आत्मा के लिए सहज अर्थात् आत्मा के सहित ज्ञात हुआ है तथापि जड़वद्ध अवस्था में वह सहज नहीं है। उस विशुद्ध कृष्ण-रति के वंचित और वन्चक गण जड़ का सहज धर्म जो स्त्री

पुरुष का संयोग उसी में परिणित कर फेंका है। वस्तुतः वह वैसा नहीं है। आत्मा के सहज धर्म जड़ या स्त्री पुरुष शरीरों के संयोग से नितांत ही घृणित व अनउपयुक्त है। संप्रति जो धर्मको "सहजिया धर्म" कहते हैं। वह शास्त्र विरुद्ध है। उस धर्म में वैष्णव गणों को प्रवेश करना उचित नहीं है। उसी धर्म में प्रवेश करके बायें कान में मन्त्र लेने की जो प्रथा है वह नितान्त अनादर्णीय है।

**द्वितीय प्रश्नोत्तर**-ब्रजेन्द्रनंदनकी प्राप्तिके लिए प्रकृति नारी संग करने का कोई शास्त्र में व साधु उपदेश नहीं है। अनु चैतन्य रूप जीव मधुर रस में प्रवेश करने से स्वयं प्रकृतित्व लाभ करते हैं। उसके लिए जड़ीय प्रकृति—संग का कोई भी प्रयोजन नहीं है'। छोटे हरिदास स्वयं प्रकृति होकर भी पुरुष भाव में दूसरे प्रकृति की साथ सम्भाषण के अपराध से दुरिकृत हुए थे। (श्री मन् महाप्रभु जी ने विरक्त छोटे हरिदास जी को चावल बदलने के कारण स्त्री से सम्भाषण हुआ, इसलिए त्याग दिया, और उनका मुंह नहीं देखा। साड़े तीन वैष्णवों में से माधवीदासी अर्ध वैष्णवी थी) "धूर्त लोग सब" कहते हैं "प्रकृति होइया करे प्रकृति सम्भाषण" प्रकृति (नारी) होकर प्रकृति से सम्भाषण करना चाहिये इस पद्य के दुष्ट अर्थ करके इन्द्रिय चारितार्थ करने के लिये पंथा (मार्ग) सृजन करा करते हैं। साधु वैष्णव गण उनकी उपेक्षा करते हैं। ग्रहस्थ्य के लिए भी विवाहित स्त्री का संग करना भजन का अंग नहीं है। अतएव केवल संसार यात्रा निर्वाह के लिए उसे (वैदिक भाव से स्त्री संग) निष्पाप कहकर स्वीकृत है।

**तृतीय प्रश्नोत्तर**—पुरुष प्रकृति एकत्र होकर भजन करने के लिये जो ब्रज मंडल सृजन करते हैं वह श्रीमन् महाप्रभू की शिक्षा के विरुद्ध प्रतीत होता है। कलि जगतके मनुष्योंका भला नहीं होने देंगे ऐसी ही बुद्धी देरहे है। शुद्ध वैष्णव मत के पुरुष साधक गण

स्त्री साथ से अलग होकर भजन करेंगे। स्त्री साधक गण कोई भी पुरुष को उनकी भजन मण्डली में नहीं आने देंगे भजन सम्पूर्ण चिन्मय कार्य है। थोड़ा सा जड़ भाव प्रवेश करने से ही नष्ट होता है। "देह तत्व इत्यादि नितान्त अहित कर प्रक्रिया है। शुद्ध वैष्णव गण कार्य भी उनको नहीं मानते हैं।

महाशय ! आप लोगों के देशमें वैसे सब दुष्ट मतके व्यक्ति यदि रहें तो आपवे सब मतको शोधन करनेका यत्न करेंगे ? इसमें धूर्त व तंचक लोगों के साथ यदि मनोबाद भी हो उसे भी श्रीमन् महाप्रभु जी के खातिर ये स्वीकार करेंगे ? मनुष्य शरीर दुर्लभ है। इसका एक दिन भी कोई अपव्यय नहीं होना चाहिये कृतान्जली पूर्वक आपको निवेदन करता हूं।

आप ऐसा गुरतर विषय पर विशेष रूप से विचार पूर्वक प्रवृत्त हों, श्रीमत गोस्वामीगण विशेषतः कविराज गोस्वामी महाशय इस विषय पर जीव गणों को विशेष सतक कर गये है। मैं अधिक और क्या कह सकता हूँ यदि हमारी बातपर कुछ भी श्रद्धा हो तो काल निर्मित सहजीया—बाउल मत सबोंको दूर करके जीवों का सहज धर्म जो कृष्ण रति है, उसी को आश्रय करेंगे। हमें आप जब भी जो कुछ पूछेंगे, उसे मैं यथा साध्य साफ कर दूंगा। यदि श्री गौरांगदेव मुझे अवकाश व शक्ति दें तो किसी समयमें आपको लिखित मत को श्री चैतन्य चरितामृत में प्रकाश करने का यत्न करूंगा। "सज्जन तोषणीय" मैं जो सब तत्व विचार हो रहा है। उसे विशेष यत्न पूर्वक पढ़ेरेंगे।

—(सज्जन तोषणी ५ यं खंड, ६टा संज्ञा, ११५-११६ पृष्ठा श्री चैतन्याब्द ४०७, वां १२९६, इं ग १८९३)—श्रील ठाकुर भक्ति बिनोद।

# भाई सहजिया

तुम मन में सोचते हो, तुम्हीं वैष्णव हो, तुम मनमें सोचते हो कि तुम्हीं भावुक हो तुम मनमें सोचते हो कि तुम्हीं रसिकहो तुम सोचते हो कि तुम्हारी जड़ बुद्धि में आनन्द कन्द भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी आवद्ध हैं। तुम्हारे प्राकृत भोग बुद्धि में श्रीकृष्ण भक्ति रस आवद्ध है। तुम कृष्ण को गढ़ सकते हो, तुम कृष्णकी भक्तिमें पारंगत हो। तुम्हारे निकट श्रीरूप, रघुनाथ भक्ति शिला कर सकते हैं, तुम जड़ रस रसिक के मध्यमें सबसे श्रेष्ठ हो। तुम्हीं अप्राकृत कृष्ण लीला को प्राकृत कर सकते हो, अनर्थ विशिष्ट होकर रसिकता के प्रभाव से जयदेव, चंडीदास को हरा चुके हो, नाम नेष्ठ हरिदास ठाकुर तुम्हारे खेलने का खिलौना है। ठाकुर श्री निरोत्तम तुम्हारे रसिकता को समझने में असमर्थ थे, क्योंकि उन्होंने तुम्हारी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाई थी। जड़ भोग मय "नव" नया रसिक दल तुम्हारे प्रष्ठ पोषक हैं। तुम्हीं लोगोंने नाच गा करके सिद्धियां प्राप्त कीया है। प्राकृत (जागतिक) रसोंकी सब डलिया तुम्हारे माथे पर ही हैं। ऐसे धन के धनी तुम ही हो। निष्किन्चिन के बचन कानों के भीतर नहीं आने देना।

## भाई सहजिया

तुमने व्रज के भाव में डूब करके अन्दर के भाव को वाहर विकाश कर दिया है। बाहर की दृष्टिमें सब बात बिकास हो जाने से भीतर में अब और कुछ नहीं है। मृत्युके बाद कुत्ते और सियार के खाद्य इस शरीर को तुमने अप्राकृत गोपी तनया बनाया है। हृदय में पौरुष भाव पोषण करके बाहर अब गुन्ठनवती सखी हुए हो नाक में नलक (बुलाक) पहने हो। पेटीकोट के ऊपर छपे

किनार की साड़ी पहिनना सीखा है। अप्राकृत वन पुष्प माला की जगह सोने के गहने पहन करके नागर (पति) की खोज (अन्वेषण) कर रहे हो। तुम्हारे भाव शुद्ध वैष्णव समझ नहीं सकते हैं।

अन्तरंग (भगवान् पारषद) भक्ति का भी बुद्धी अगोचर है (अर्थात समझ नहीं सकते है) कहने में शर्म आती है तुम लोगों की बात में सब स्त्री जड़ धर्म देह ही प्रकाश होता है। केवल ही पुरुष का भाव और बाहर स्त्री का भेष। यह क्या रसिकों का धर्म है?

महाप्रभु बाहर पुरुषथे, अन्तरमें कृष्ण सेविका गोपी चित्त भाव पोषण करते थे। और हे भाई सहजिया तुम हृदय में पुरुष भाव बाहर गोपी भेष महाप्रभु ने जो शिक्षा दी है। तुम्हारा आचरण ठीक उसी के विपरीत है। प्रभु कहते हैं—"आत्मा का धर्म गोपीभाव **तमने समझा** हैकि देह धर्म गोपी **भावहै'अन्तरनिष्टाकर** वाक्य लोक—**व्यवहार**।" (भीतर निष्ठा **भजन करना** चाहिये। संसारिक लोगों को सांसारिक व्यवहार करना चाहिये। अर्थात अपने भजन का विषय गुप्त रखना चाहिये।) प्रभुके भक्त को तुम उल्टा करके जड़ भोग में प्रवृत्त करते हो। लेकिन तुम कह सकते हो यह कलियुग है। प्रभु जो कुछ कहते हैं उसके ठीक विपरीत आचरण करने से प्रभु के अनुगत कह कर बाहर प्रकाश हो जायेगा।

प्रभु ईश्वर हैं, जीव आधीन हैं। इसलिये जीवों को आचरण प्रभु जो कुछ कह गये हैं उसका विपरीत करना चाहिये कृष्ण क्या तुम्हारी तरह प्राकृत वस्तु हैं, तुम प्राकृति सखी भाव लेकर हो, कृष्ण अप्रकृत छोड़कर तुम्हारे हाथ छूने के लिए व्याकुल होंगे क्या? कृष्णचन्द्र व्याकुल होकर स्त्री भेष धारी तुम जैसे पुरुष

देह धारी को लेकर किस तरह से वस्त्र हरण करेंगे ? यदी तुम्हारे भाग्य से कृष्ण द्वारा सांसारिक वस्त्र हरण हो, तो तुम्हारी कपटता का पोल खुल जायगा। और यदि रूप के अनुगत स्वीकार करके अन्तर में चिन्ता करके सेवा के उपयोगी बनते तो सिद्ध देह द्वारा कृष्ण अप्राकृत मानस सेवा करो। इस तरह वस्तु सिद्ध समय में घृणित प्राकृत देह पड़ा रहता। भाई सहजिया ! अनित्य देह क्यों अपनत्व बुद्धि करने के लिए जाकर सखी भेष बने हो। हम लोग भी तुम्हारे मतलबको समझ करके तुम्हारी तरफ आकृष्ट न हो सकें।

भाई सहजिया—तुम कैसे कृष्णके नाम रूप गुण लीलाको तुम्हारे जड़ धर्म में लाकर जड़ सुख (सांसारिक सुख) उपार्जन करते हो। भाई तुमने पूजा के नाम से अच्छी अच्छी सामग्रियोंसे अपना पेट भर डाला। क्यों भाई बड़े धनी के घर पर जाकर कृष्ण प्रसाद की छलना करके इन्द्रिय तृप्त करते हो। क्यों भाई ! ठाकुर सेवा के अर्थ को अपने भोग विलास में लगाते हो ? क्यों भाई ठाकुरके अर्थ से स्त्री लोगों की तोड़िया बनाये क्यों भाई गुरू सहजिया शिष्य को नरकमें भेजा है। क्यों भाई ! गुरू उपदेश को छोड़ कर जड़ भोज में मन रमाये हो ! क्यों भाई बहुत से शिष्य करके दल बनाये हो ? हम लोग तो तुम को नाना स्थानों में देख रहे हैं तुम कभी रागानुगीय साधका अगन्य होकर कनिष्ठा धिकारीका घंटा बजातेहोऔर कभी पुष्पादिकेसुगंधका आनंदलेकर आनंदित हो रहे हो। कभी लोग के मुख बन्द करने के लिए भिक्षा दे रहे हो। क्यों भाई ! बकरी के मुंह में दही लगाते हो ये सब करके तुम्हारे को क्या लाभ होगा। मुझे समझा दो तब मैं समझूंगा कि तुम दुकान खोल कर ठगने में व्यस्त हो।

तुम क्यों प्रपञ्चों को आश्रय देकर अप्राकृत तत्व जीवों के भोग में घृणित चरित्रों को भीतर लारहे हो। तुम क्यों श्रीकृष्ण की परिकिया विषय तत्व को न समझ कर जीवों को क्यों पाप के कीचड़ में फसा रहे हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारा और कोई विषयमें साधन के लिये नारदादि की दुलभ प्रेम भक्ति के पापकी मूर्ती बना रहे हो। तुम्हारे पाप की सहायता के लिये कोई भी पीछे नहीं हटेगा। हरि बिमुख के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। तुम्हारे लिए पश्चाताप करता हूं और तुम्हारी सुबुद्धि हो। अनंत कोटि पूर्ण ब्रह्माण्ड नायक श्री गोपीजन बल्लभ के चरणों में प्रार्थना करता हूं।

भाई साहजिया ? तुम्हारा धर्म, कर्म भी रामानन्द राय की तरह निर्मल और सीधा स्वच्छधर्म नहीं है।

तुम्हारा धर्म गोपीगण की हृद्गत भाव नहीं है। साधू को उद्धव महाशय, लक्ष्मीदेवी, एवं श्रुतिगण, दंडकारण्य वासी ऋषीगण जिनका रमणीय सुन्दर शीतल अनुगत्य लाभ की आशा में सर्वदा ही उत्कंठित है। उसी बृशभान नंदिनी की कृपा पाकर उन्हीं की पद रज कव तुम श्री रूपाश्रित भक्तजनों के सदृश्य प्राकृत रस के द्वारा सेवा करोगे। श्री कृष्णचन्द्र रसमय, और बृशभानकुमारी जबतक तुमको अपने गणोंमें अप्राकृत रसमयी बनाकर परिचायक नहीं करेंगी तबतक तुमको अप्राकृत लीलायें अधिकार नहीं है। भोगमय जड़ बुद्धि के द्वारा रसमयी लीला का रस सेवा में अधिकार नहीं मिलता है।

भाई सहाजिया ?—तुम सब लम्पटों ( धूर्तों ) को प्राकृतिक लाम्पट ( ढ़ोंग आडंबरी ) अवश्य शिक्षा दे रहे हो। संजत व्यक्ति को प्राकृत व्यवचार में प्रवृत्त कर रहे हो। धर्म आचरण करने के बिपरित मार्गपर ले जान तुम्हारा उचित है ? कृष्ण, परम रसमय

(रसिक), अप्राकृत बृन्दाबन में उनका अवस्थान है। तुम्हारी सांसारिक भोग की मिश्रित धारणाओं में वह बंध गये हैं।

मनमें सोचना केवल पागलपन मात्र है, और कुछ भी नहीं। तुम जड़ीय चित्र लेकर गोपीजन वल्लभ की लीला अंक न करोगे यह तुम्हारे अपराध के फल मात्र है। श्री कृष्ण अप्राकृत लीलामय हैं। उसे तुमने जड़ जगत् में आकर विकृत सत्य धर्म को मूल से नष्टकर दिया है। तुम यह दंड विधी के सासन योग काम कर रहे हो।

भाई सहजिया ? तुम अप्राकृत विरह रस को न समझ कर प्राकृतिक संभोग का आदर बढ़ाया है। प्राकृत संभोग रस तुमको हरि बिमुख करायेगा। जब तुम बृशभान नन्दिनी की चरण में आश्रय लोगे तब तुम्हारा जड़ इन्द्रिय सुख एकदम विदग्ध हो जायगा जड़ रसकी जली हुई राख तुम्हारे प्राकृत अभिमान रूप मान वृक्ष के नीचे छोड़ कर के निरअभिमानी होकर हरिनाम का भजन करो। अप्राकृत रसको प्राकृत रससे मिलाना नहीं। श्री गौरांग की सुन्दर अप्राकृत के विरह रस तुम्हारे प्राकृत सुख स्वछंदता को नष्ट करें। तुम प्राकृत सहजीया का संग दूर करके शुद्ध भक्त हो। तुम श्री रूपोनु गणों के चरणाश्रय में जाकर के अप्राकृत रस की उद्दीपित करो, करने से तुम्हें प्राकृत प्रतिष्ठा आकर के तुमको नरक गामी न सतावेगा।

भाई प्राकृत सहजिया ? तुम्हारे साथ श्री रूपगणों के साथ किसीदिन भी कोई सम्बन्ध नहीं हुआ। तब तुमने जो सम्बन्ध मन में सोचा है, वह बावन रूप होकर हाथ से चांद को छूना चाहते हो ? जब तक तुम्हारे प्राकृति संभोग रस तुम को बांचना नहीं करेंगे तब तक तुम अप्राकृत वस्तुओं को भी तुम्हारे अपने प्राकृत भोग की वस्तु मन में सोचोगे वह कभी भी कृष्ण सेवा नहीं हो

सकती है। यदि बनावटी कृष्ण ही कृष्ण होते तो अप्राकृत गोपी-गण उनके हाथों में होतीं, और यदि गोपीगण सुन्दर शृंगार करके नाटक करने के लिये जातीं और ठीक २ श्री कृष्ण की सेवा करतीं तो वे सब गोपी भाव को नहीं छोड़तीं। नाटक करते समय सुन्दर शृंगार गोपी हृदय का भाव यदि स्थाई होता तो साक्षात लीला रस ही सर्वदा के लिए रसिक हो जाता।

माटीकी बुद्धीके द्वारा माटिया अभिमान में माटिया के रस सेवा करने से, अप्राकृत विरह रस नहीं समझाया जाता है।

भाई सहाजिया ? तुम अपनी मट्टी की बुद्धि का त्याग करो यदार्थ ही श्री रूपानुगण के अप्राकृत प्रेम मिलन से तुम अवश्य ही लाभ उठाओगे प्राकृत सहजिया दल तुम्हें माथे पर लेकर नाचेगा, तब भी तुम निजी भोग में मिट्टी की बुद्धी को नहीं त्याग सकते। चिन्मय बुद्धी से चिन्मय देह चिन्मय रस द्वारा चिन्मय पाल्यदासी होकर निरंतर सेवा करो। जिससे तुम्हारे हृदय की कुहर में चित रस उफनेगा।

भाई सहजिया ? तुम मन में सोचते हो, अकुमार ब्रह्मचारी श्री जीव गोस्वामी, श्री निरोत्तम ठाकुर प्रभृति संसार में प्रवेश न करने से, तुम्हारी तरह जड़ रस नहीं समझ कर के कोई दिन भी रसिक नहीं हुए हों, तुम प्रकाश और अप्रकाश में मनुष्य संग्रह कार्य में पटु हो कर शिव ब्रह्मादि का – दुर्लभ अप्राकृत राधा कृष्ण रस को उज्वल किया है। भाई तुम से और क्या कहूँ, मैं आशीर्वाद करता हूँ – कि तुम अपनी जड़ीय तर्पन में व्यस्त हो कर सहाजिया मंड ली को वही सिखाओ। तुम और नीरस हो कर जड़रस छोड़ कर अप्राकृत रस सेवा का प्रयोजन नहीं है। अप्राकृतरस सेवा का भार केवल रूपानुगणों के लिये ही रहने दो। भाई

सहजिया ? राई कानु ( राधा कृष्ण ) क्रीड़ा का रहस्य तुम जन-साधारणके निकट अंग भंग करके गाना गाते डोलते हो। कितने नसेवाज, कितने धूर्त, तुम्हारे गाने को सुनकर अप्राकृत रस को प्राकृत जड़रस समझें। तुम भी नीचों की तरह बीच बाज़ारमें और जंगल में रबोल करताल बजा बजा कर प्राकृत रस के फुआरे छुड़ा देते हो।

तुम्हारे साथ दूध पीने वाले बच्चे भी जड़ रस के पंडित हो कर गोविन्द लीला गान करने के लिये विद्या सुन्दरी रस मंजरी को छोड़ कर बैठ जाते हैं। महाप्रभू "यः कौमार हरः" गान सुन कर के प्राकृत युवक और युवती अपने २ प्राकृत धर्म में मतवाले न हों पिता पुत्र एकत्र बैठ कर आज कल की सभ्यता के अनुकरण से बैठक में बैठ कर नग्न चित्र विशेष देख कर और सुन कर उस की पुष्टायी हो सकती है। राधा कृष्ण के गाने प्राकृत कानों से सुन सकती है, एवं सहजिया वशका विस्तार करके वैष्णवगोष्ठीकी वृद्धी सोच सकते हो। अपनी भजन की बात प्रचार करके प्रतिष्ठा के लाभ में ढोल बजाकर रसगान गाना क्या भाई अच्छा है ?

भाई सहजिया ? तुम्हारी आंखे हमेशा छल २ हैं, नासिका मैं सर्वदा नाक भरी रहती है, खोल में चांटी लगाने से पहिले ही आखों से आसुओं की धारा वह निकलती है, और प्रेम में मग्न होकर दूसरे के कंधे पर सर्वदा हाथलगे रहते हैं, सारी स्त्री जात के पदरजों में तुम्हारे मस्तक भूषित रहते हैं, स्त्री लोग ही बड़े भक्त हैं। प्रभृति विचार समूह में तुम बड़े ही पारदर्शी हो। कीर्तन करते २ मूर्छित होना तुम्हारा धर्म है, आप को रस केन्द्र के मुकुट-मणि, रागानुगीय, सिद्धाप्रगन्य रस में डगमगाना जानते हो ? प्रभृत जड़भाव विभोर जानते हो। 'तुम्हारी चातुर्य भक्त और अभक्त सब ही जानते हैं। तुम गोदास होकर गोस्वामी होना चाहते

हो, अजात रति होकर रसिक होना चाहते हो, साधनका अनर्थ न करके सिद्ध के भांड़ में प्रेमी होना चाहते हो, तुमको देव दासी के मुंह से गान सुनने से बड़ा आनन्द आता है।

वेश्या के कंठस्वर से हरि कीर्तन सुननेमें तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है। ढोंगी कीर्तनियां के रस गान में भी रसाभास युक्त आखर में तुम विभोर हो। तुमको मैं अच्छी तरह जानता हूं, लेकिन तुम्हें वैष्णव कह कर बुलाना नहीं जानता था।

तुम्हारे वे रसिक भाई—
रुपानुग (श्री ल. प्रभुपाद)

# भाई सहजिया

## अनर्थ काल में कृत्रिम (बनावटी) सिद्ध प्रणाली

## (अमंगल जनक)

भाई सहजिया ! तुम कहते हो मैं गुरुभार कार्य नहीं करता हूं, केवल मात्र सिद्ध प्रणाली देकर जीवों को साधन दसा से मुक्त करता हूँ। हमारे दल में सब ही सौभाग्यवान भक्त हैं, रागानुग भक्त हैं। वे लोग पाँच रात के मंत्र के अधीन नहीं रहते हैं। गुरु स्वयं शिष्य के शिष्य हैं, इस लिए वे वैध भक्त के पास से भी नहीं चलते हैं। तुम कहते हो कि शिष्यानुबन्ध में भक्ति नहीं रहती हैं, तब क्यों तुम ऐसा प्रयास करते हो ? तुम कहते हो- मैं शिष्य नहीं करता हूँ, वह कहना सत्य है। आज कल के जमाने में आठ आने पैसे देने से सिद्ध प्रणाली मिलती है। सिद्ध प्रणाली को मंत्र न मिलने के पहले ही दाम तै हो जाता है। साधक का कोई मंगल नहीं है। तुम कहते हो- रागानुग भक्त के अनर्थ निवृत्तिके पूर्व ही सिद्धी प्रणाली मिलना आवश्यकहै, लेकिन अनर्थ रहने के समय सिद्ध प्रणाली को अनर्थ जड़ित करना क्या तुम्हारे लिए अच्छा है ? फूल होने से पहले ही पत्ता में फलेगा ? ऐसा समझना क्या शठता नहीं है ?

### जहाँ-तहाँपर रसकी र्तन और भजन की वार्ता करना निषिद्ध है

भाई सहजिया ? तम जहां तहां रस गाना सिखाते हो, रस गाने सुनने जाते हो, रस गान गाकर अपने को रसिक सोचते हो,

रस्ते और बजार में रस के कुसम (फूल) बिछा देते हैं। तुम्हें क्या रस अच्छा नहीं लगता है ? तुम अप्राकृत रस को इतना अनादर करना क्यों सीखे हो। भजन का रहस्य क्या बाहर प्रकाश करना उचित है। 'अपनी भजन कथा , जहां तहां नहीं कहनो चाहिये।

## विभिन्नांश जीव स्वरूप अनुयायी 'मंजरी' होने से भी 'सखी' नहीं हो सकती है।

भाई सहजिया ! तुम्हारे प्रदत्त सिद्ध—प्रणाली पाकर मंजरी गण बहुत से समय अपनी सेवा भूलकर सखी अभिमान करके बैठे रहते हैं। भाई ! तुम क्या 'पादाब्जयोस्तव विना' श्लोक को भूल गये ?

भाई ! मंजरी तो कभी अपने को सखी नहीं कहते हैं, मंजरी परिचारी का गण अपने गुरू को सखी अभिधान करते हैं । तब क्यों तुम मंजरी हृदय के भाव को एवं सेवा को भूल गये ? जिस को मंजरी रूप में परिणत किया है, वह क्यों 'दास्य' विस्मृति होकर गौरव मयी 'सखी' हुई। वह क्यों मंजरी—वृत्ति को छोड़ कर खाण्डित्य अभिमान किया ? वह क्यों किशोरी धर्म त्यागकर के प्रवीण वृद्धा अवस्था में प्रवेश हुये।

## कृत्रिम भाव से वसन भूषणों की कल्पना करना साधक के लिये अहित कर है।

भाई सहजिया ! तुम्हारे वाक्य—प्रदत्त वसन उत्तरीय उसे क्यों अच्छे नहीं लगें ? वह क्यों कालिन्दी-तट-कुंज को परित्याग करके प्राकृत (संसारिक) घर में प्रवेश किया ? वह क्यों प्रवल इन्द्रिय ताड़ना में चुपचाप पुरुषाभिमान किया।

## सहजियागण कामुक विधानय से वे लोग वात्सल्यादि रस को अस्तित्व अस्वीकार करते हैं।

भाई सहजिया ! तुम्हारे विचार में वात्सल्य, साख्य, दास्य रस बदल हो गया, मनुष्य देखते ही तुम मधुर रस में पारदर्शी कहकर समझते हो इसलिए नन्द का आश्रित व्यक्ति को चित्रक रक्तक, पत्र के आश्रित भक्त को भी तुम मंजरी सजाते रहते हो, और निषांत लीला के गीत सुनाकर कक्खटी को अनुगत्य सिखाते हो, क्या ये सब तुम अच्छा समझते हो, क्योंकि तुम्हारे अनुमाम में वैसी ही योग्यता है।

## प्राकृत वस्तु जड़ीय गुन से अप्राकृत नहीं होता है।

भाई सहजिया ! तुम क्यों अप्राकृत अर्चा ( पूजा ) की मूर्ति को, अप्राकृत हरिनाम को प्राकृत कहकर समझाते हो ? भगवान् के वैकुण्ठ नाम और श्रीमूर्ति कभी भी प्राकृत नहीं है। तब तुम उसको क्यों प्राकृत समझे हो ? भाई तुमने कहा कि—जड़ द्रव गुण से प्राकृत बुद्धी अप्राकृत होगी। श्री विग्रह की शिला और काष्ठ बुद्धि करने से भी नित्य—शुद्ध—पूर्ण—मुक्त, चित् स्वरूप अभिन्न—नामनामी हरिनाम में जड़ीय अक्षर बुद्धि करने से भी, अर्थात् अर्च्चाय में शिला बुद्धि और अपराध युक्त अक्षर उच्चारण के प्रभाव से सभी को ही गोलोक लाभ प्राप्त होगा। परन्तु शास्त्र में और महाजनों ने वह निषेध क्यों किया है ?

तुम तो जानते हो कि सेवा उन्मूख होने से कृष्ण का नाम रूप, गुण, लीला शुद्ध—चित् देह में स्फूर्ति प्राप्त होने से प्राकृत इन्द्रियों का विकार उत्पन्न करता है।

## जड़ देह में आत्म बुद्धि या सिद्ध देह बुद्धि की गर्हभता।

'यस्यात्मबुद्धिः' (१०।८४।१३) श्लोक में से हीं तो तुमने समझा है कि तुम्हारे जड़ शरीर को सिद्ध देह सोचने से गर्हभता होती है, तुम्हारे पत्नि, पुत्र, बन्धुबान्धव गण को तुम्हारे निजी ज्ञान करने से तुम्हारी गोखरत्व होती है। अर्च्चा (पूजा की) मूर्ति को प्राकृत जानने से तुम्हारी निर्बुद्धिता है, कृष्ण चरणामृत को अप्राकृत न जानने से तुम्हारी रसा भास है, और भी 'येषां स एष भगवान्' (भा० २।७।४२) श्लोक से तुमने ज्ञापन किया है कि कुत्ता सियार के खाद्य देह को जो निजी सेवानोपयोगी सिद्ध देह कहना जानते हैं, वह माया के हाथ से परित्राण भगवानकी दया नहीं पाते हैं। वह कपटता के बीच में पतित होते हैं 'अर्च्चये विष्णौशिलाधीः'(पद्मपुराण)के श्लोकको तुम जानते होकि हरिनाम में अक्षर बुद्धि करने से, श्री मूर्ति को काष्ठ-शिला बुद्धि करनेसे, वैष्णवमें जाति बुद्धि करनेसे, अप्राकृत भगवानमें प्राकृत जीव बुद्धि करने से, गुरू जी की मरणशील व्यक्ति को जीव बुद्धि करने से, चरणामृत में जल बुद्धि करने से जीव प्राकृत नरक में पतित है।

## फनोग्राफ नाम (?) करने से गोपी रसिक नहीं होतीं हैं।

इसे भी छोड़ कर 'प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्ति विलोचनेनः' (ब्र० सं० ५।३८) श्लोक को भूलकर के अप्राकृत गुरू के पाद पद्म को छोड़कर सहजियायों के गुरू का पद वरण किये हो क्या? जिन सब मायावादियों को देख के तुम सिहरा उठते, उन्हीं सहजियायों के धामा धरा (लग्गू) होकर आज क्यों भाई? तुम ही कहते हो कि अपराध मय नाम के शक्ति से कुछ नहीं हैं फनोग्राफ यन्त्र ही गोपी हैं। प्राकृत अभिमान के वशीभूत होकर प्रतिष्ठा संग्रह और व्यभिचार करते करते जीव गोलोक जाने के

परिवर्त्तन में नरक में जाता है। 'शास्त्र सब अन्याय पूर्वक तुम्हें गाली गलौज देते हैं, उसी के लिए भक्त, और भक्ती शास्त्र के अपराधी हुये हैं! साथ ही साथ हमारा भी पाप हुआ है। अब से हम सब और हरिनाम न करके सारे 'फनो ग्राफों' को रसिक भक्त करके गोलग में भेजेंगे। मुंह से हरिनाम करना छोड़ देवें 'फनोग्राफ से ही हरि संकीर्त्तन कर लेंगे सुन लेंगे, और अखंड हरि नाम कीर्त्तन इत्यादि का काम कर लेंगे। और हम लोग अपने विषय कार्य में नियुक्त रहेंगे। और भाई सहजिया! तुम लोग इन लोगों के प्रति सन्तुष्ट रहोगे।

# विल्वमंगल को उदाहरण में सहजिया क्रम--लंघन अशास्त्रीय है।

भाई सहजिया! तुम्हीं कहो श्रद्धा तो सामान्यवात है, जिन्हें कि लोभ हुआ है, उनको फिर क्रम क्या है? 'लोभ' होने से ही तो विल्वमंगल के सदृश्य सब ही श्रद्धा, साधु संग, भजन क्रिया, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव, प्रभृति साधन क्रम त्याग करेंगे—भावाङ्कुर का लक्षण होने से प्रकाश की उसमें आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक प्राकृत सहजिया, प्रत्येक 'चिन्तामणि' —गुरू के निकट कृपालाभ करके ही प्रेम का स्नेह, मान, प्रणय, राग के हाथ से परित्राण पाकर बिलकुल ही विल्वमंगल—ठाकुर होकर अनुराग सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं।

तुम बात बात पर पापिष्ठ और लम्पट गणों को प्रश्रय देने के लिये उन लोगों को प्रेम का पंचमस्तर अनुराग का मालिक मानते हो। यह क्या भाई रुपानुग का मार्ग है ? तुम भाई "भक्ति रसामृत" और "उज्ज्वल" को क्यों नहीं मानते हो ? विशेषतः लोभ—मूला श्रद्धा, लोभ मूला साधु संग, लोभ मूला भजन क्रिया, लोभ मूला निष्ठा, प्रभृति टपका कर अचानक सब ही बिल्वमंगल नहीं होते हैं।

# वैधक्रम अवलम्बन करने से राग और लोभ की उत्पत्ति होती है, बिल्व-मंगल के दृष्टांत अत्यन्त ही विरल हैं।

विधि मूला अर्थात शास्त्र शासन—भय मूला श्रद्धा का क्रम वैध-भक्ति क्रम है। और भी लोभ मूला श्रद्धा से रागानुरागा के क्रम तुम्हारी बुद्धिमें क्यों नहीं है? चरितामृतके बीचमें त्रियोविंश परिच्छेद में रागानुग भक्त का प्रेम उदय का लक्षण वर्णन करते समय महाप्रभू ने सनातन से कहा है, कोई भाग्य में किसी जीव

की यदि श्रद्धा होती है। तब वह जीव साधु संग करता है। साधु संग से श्रवण कीर्तन होता है. उसी से साधन भक्तों का सर्व्व— अनर्थ निवारण होता है। अनर्थ निवृत्ति होने से भक्ति निष्ठा होती है। निष्ठा होने से ही श्रवणादि में रुचि उपजती है। तब रुचि होने से प्रचूर आसक्ति होती है। उसी आसक्ति से ही चित्त में कृष्ण प्रीति का अङ्कुर उत्पादन होता है।

वही भाव गाढ़ा होने से प्रेम नाम पैदा करता है। और उसी प्रेम प्रयोजनमें सर्वानन्द धामका जन्म होता है। (क्षान्ति प्रभृतिनौ) इह नव (नौ) प्रीति अङ्कुर जिसके चित्त में पैदा होता है। प्राकृत क्षोभ में उसका क्षोभ नहीं होता है। प्रेम क्रम पूर्वक बढ़ कर स्नेह, मान, मैं परणित होता है, उसी से राग, अनुराग, भाव, महाभाव, भी पैदा होता है। रागानुग-मार्गीय 'चिन्तामणि'— गुरू सब कोई को भाग्य मिलेगा—यह बात नहीं है।

*"साधनाभिनिवेशेन कृष्ण तद्भक्तोस्तथा।*
*प्रसादेनाति धन्यानां भावो द्वेधाभिजायते॥*
*आद्यस्तु प्राथिकस्तत्र द्वितीयो विरलोदयः।"*

इसलिये भाई सहजिया! तुम्हीं तो जानते हो अनर्थयुक्त वैध साधक मात्र ही रागानु—मार्गीय परम दुर्लभ कृष्ण भक्त का प्रसादजभाव विल्वमंगल नहीं है।

## साधन व क्रमपथ व्यतीत सिद्धि नहीं होती है।

**भाई सहजिया!** साधन भक्ति रागानुगा नहीं है ये बात तो तुम्हारी नितांत भूल है। तुम एक बात से ही विल्वमंगल के उदाहरण देकर रागानुग मार्ग में सब साधकों से एक दम ही अनु-

राग में उठा दोगे, इस बात को श्री रूप गोस्वामी विश्वास नहीं करते हैं। तुम्हारे इस तरह के भ्रम विश्वास को सुनकर मुझे एक कहानी याद हुई। कोई भृत्य नितान्त क्षिप्रता प्राप्त होकर कोई दूर से देश से अति थोड़े समय में पैदल आने वाले उसके स्वामी ने उसकी बात का विश्वास नहीं कर सका। इसके जवाब में भृत्य ने कहा कि इससे मालूम होता है कि जब मैं पैदल आने के समय कुछ रास्ता भूल आया हूँ।

भाई सहजिया! तुम्हारे भक्ति मार्ग पर चलना भी क्या ऐसा ही है? सभी कोई बेलन के ऊपर चढ़कर रास्ता को छोड़ नहीं सकते हैं। सेतु के साहाय्य व्यतीत लंका में पहुंचने का भाग्य नहीं घटता है। (क्रमशः)

(२८४-२८८ पृष्ठा श्री गौड़ीय पत्रिका)

# भाई सहजिया

*(पूर्व प्रकाशित ६ पृष्ठा संख्या, २८८ के बाद)*

## साउड़ी के सीतानाथ बाबू के सहजिया मत और उसका हेयत्व।

भाई सहजिया! तुम्हारी बात मैं समझ गया हूँ—अपराध युक्त नाम और शुद्ध नाम में तुम्हारा अभेद अज्ञान है। मैं समझा हूं— **भोग मय—विलास—कानन ही तुम्हारे विचार में वृन्दाबन संसार क्षेत्र है**—तुम्हारा श्री क्षेत्र नवद्वीप भूमि-दूसरे कर्म भूमि की तरह प्रकृत वसाभिनय का रंग मंच तुम्हारे रक्त

गद् मय देह में अप्राकृत कह कर तुम्हारा विश्वास है, कपट भाव प्रदर्शन ही कृत्रिम ( बनावटी ) अचेतन होना ही तुम्हारी अन्तर्दृशा है। **थेटर में वेश्या के मुंह से हरिनाम सुनकर तुम संसार पार होगे,** पेशेदार नर्तकी गायक रस गाम करके तुम को पार-कीय भाव सिखाकर तुमकोहरिनाम सुनायेगी.पेशादार कथा वाचने वाले श्री मद्भागवत पाठ सुनाकर तुमको विषय से उद्धार करेगा, आचार्य वंशीय व्यवसाही गुरू के निकट तम कुछ रजक (रुपया) भेट करने से ही तुम्हारी वैष्णवता सुसिद्ध होकर सारे दुःसंग को हजम करने का मन्त्र मिलेगा।

तुम्हारे हाथ का पानी चल सकेगा—तम्हारे हाथ से सकड़ा (कच्चा रसोई) स्पर्श होगा, तुम्हारे तरफ वे लोग एवं उन लोगों को सरदार बकालती करके प्राकृत सहजिया गिरि ही भागवत् धर्म कहकर गगन भेदी आवाज करेगी, सुर—मान-ताल-राग सीखनेसे ही अपराध मग कीर्त्तन तुमको हरि कीर्त्तनियां करेगा।

थियसफिष्ट सम्प्रदाय तुम्हारे पोषक हैं मायावादी गण तुम्हारी चातुरी समझने में अक्षय हैं. इसलिये तुम अपनी साधुता के छल में वह व्यवसाय अच्छी तरह चल सकती हो यह सब करने से तो तुम्हारी असली कमाई हो जायगी. इस बात को क्यों नहीं समझते हो ?

## नाम, मन्त्र, विग्रह और ग्रन्थ–व्यवसाही-सह जियायों का दुःसंग।

( भाई सहजिया ! ) देखो. तुम्हारे लिये श्री जीव गोस्वामी ९१ संख्या **"भक्ति संदर्भ"** में लिखा है।

"नाम ग्रहणादीन्यपि यदि कर्म्मादौ तत् साद्गुण्याद्यर्थं प्रियुज्यन्ते तदा तस्य (धर्मस्य) परत्वं नास्ति, तुच्छफलार्थं प्रयुक्तत्वेन तदपराधादित्यर्थः। तथैव क्षयिष्णु फलदातृत्वञ्च भवतीति भावः"।

हरिनाम-गायक-सज्जा कर नाम बेच कर के, मन्त्रजीवी होकर मन्त्र बेच कर के, देवालय में पूजा बेच करके, (कौपीन ले करके निजी जीह्वो पस्थ प्रभृति इन्द्रिय तर्पण के लिये भिक्षा करके) आचार्य, पंडित, गोस्वामी होकर श्री 'ग्रन्थ' (किताब) बेच करके उसी अर्थ को जली हुई पेटकी सेवामें, कुटुम्ब भरण के उद्देश्य में. प्रतिष्ठा और दलवृद्धि की कामनामें नियुक्त करने से क्या उपकार होगा? शुद्ध भक्तगण और साधारण लोग सहजियाओं को दुःसंग ज्ञानसे त्याग करेंगे।

# साउड़ी सहजियाओं का अकाल झंडा और गुरु द्रोहिता।

भाई सहजिया? तुम इन्द्रिय दमन से अपारक होकर सिद्धताई के भान से राधा गोविन्द की लीला का रहस्य इन्द्रिय परायण विशृंखल लोक समाजमें गाने गाकर 'सेवा-कल्पना' * के

---

* सीतानाथ बाबू के रचित 'सेवा संकल्प' नामक सहजिया ग्रन्थ का प्रतिवाद। —सम्पादक

नाम पर कविता लिख कर 'कंचारस'+ की दुकान खोल रहे हो। कोई तुम्हें बाधा देने के लिये आने से तो, तुम्हारे गुरु प्राकृत सहजिया थे एवं वही (चक्रवर्ती-जीवि वृन्दाबनस्थ सहजिया गुरु) ने तुम्हें वही शिखाया हैं? कहो, तुम भक्तिके अनधिकारी हो, इसलिए क्रम पंथा छोड़कर उश्रृंखलता ही हरि-भक्ति का तात्पर्य्य है, यही अनाधिकारी को शिक्षा देरहे हो। —इसमें क्या भाई! तुम्हारा अपराध नहीं हो रहा है?

## 'विक्रीड़ितं' और 'अनुग्रहाय' श्लोक के बहाने से सहजियाओं की कुचेष्टा

'विक्रीड़ितं व्रजवधूभिः' श्लोक और 'अनुग्रहाय भक्तानां' श्लोक के विकृतार्थ ही सहजिया कुल के मूल मन्त्र कहकर तुम्हारी शुद्ध भक्ति विनाश करना ही क्या भाई अच्छा हुआ? भागवत के श्लोक की सहायतासे वैकुण्ठ वस्तुको माइक वस्तु मात्र कहकर साव्यस्त करना ही क्या भाई तुम्हारा साधू धर्मका प्रचार हुया? 'भाई सहजिया'! तुम्हारे हमारे तरह कितने हरि बिमुख विषयलोलूप्य रावण, अभिमन्यु प्रभृति 'फाँस गाँठ की तरह' हरि को पाकर भी प्राकृत बुद्धि से जड़ दुःख कष्ट पाये हैं। तब क्यों

---

+ *'कांचारस' शब्द को 'कान्तारस' शब्द के परिवर्तन में व्यवहार हुया है कह कर शोचते हैं। लेकिन इससे कच्चा रस व कांचन रस भी समझते हैं।*

*—सम्पादक*

भाई ! देख सुन करके भी अप्राकृत वैष्णव परम हंस धर्म को कलंकित कर रहे हो ? श्रील भक्ति विनोद ठाकुर कह रहे हैं— एक बृद्धा अन्तिम समय उसकी मुमूर्षु पुत्र के मुंहमें घी डालकर पूछा क्यों बत्स ! तागत आरही है ? सब ही कहते हैं घी खानेसे तागत होती है। प्राकृत सहजियायों 'विक्रीडितं' और 'अनुग्रहाय' श्लोक का व्याख्यानके द्वारा आत्मा प्रवंचना भी इसी बुड़िया की विचार के सदृश्य है।

## अनर्थ निवृत्तिके लिये रास-लीला गाने से अनर्थ की वृद्धि

भाई सहजिया ! तुम विचार कर दिखाओ कि जिस साधन में अनर्थ युक्त कामी, रास-लीला के गाने से उसका अनर्थ छूटता है, जिसका अनर्थ नहीं है, उसके लिए रासलीला सुनने की आवश्यकताकी अपेक्षा प्राकृत सहजियाकी आवश्यकता ज्यादा है। तुम्हारी और भी युक्ति यह भी है— अनर्थ श्रोत कभी भी रूद्ध नहीं होगा, इस लिये अनर्थ रहते रहते रासलीला आरम्भ कर देना ही उचित और शास्त्र का तात्पर्य है। अनर्थ का बोझा कन्धे से नहीं उतारना, उसे बन्दर बच्चों की तरह गोदी में रखकर कृष्ण की सेवा बृत्तिचरितार्थ करेंगे तो फिर और अनर्थ तुम्हें कभी भी नहीं छोड़ेगा।

## एँचोड़े पाकका सहजियायों के अनर्थ बृद्धि का कारण

उसीको ग्रहण करते करते क्रम पंथा से हरि सेवा में प्रबृत्ति कापरिणाम बढ़ जानेसे और क्षान्ति आनेसे अनर्थ छूट जाती है।

तब श्रद्धा होते नहोते ही प्रथम साधनके समय (एंचोड़े पाकाईवार) कच्चे कठैर को पकाने के उद्देश्य में प्राकृत रस से अन्तः करण शुद्ध नहोने से, और रासलीला आरम्भ कर देनेसे साधू सङ्गत नहीं होती है। सज्जननों को असाधु बुद्धि, और अनर्थमय सहजियाँओं को साधु बुद्धि होगी। इस लिए असत् को साधु समझ करके उसके पास से साधुता नाम से असाधुता सीखने से अप्राकृत रास लीला इन्द्रिय तर्पण में परिणत होता है। इन्द्रिय पिपासा वृद्धि होकर अनर्थ बढ़ती है। **और भी साधन काल के पूर्व ही रास लीला श्रवणकेफ लसे अनर्थ निवृत्ति, इस बात को कोई भी भक्त व शास्त्र नहीं कहते हैं।**

## कृष्ण-लीला-स्फूर्ति का क्रम विचार

श्रीनाम अपराध से मुक्त होकर उच्चारित होने से अन्तः करण प्राकृत विषय व अनर्थ से अवसर पाते हैं। तब ही कृष्ण रूप की स्फुर्ति होती है। 'कृष्णरूप स्फुर्ति' होने से ही कृष्ण गुण का उदय होता है। 'कृष्णगुण की स्फुर्ति' होनेसे ही परिकर सेवामें उल्लास विचार होता है। और उससे कृष्णलीलामें चित्त प्रवेस करता है।

### रासलीला का अधिकारी और अनाधिकारी

भावुक और रसिकगण को ही भागवतीय रासलीला पाठ का अधिकारी कहा गया है। **प्राकृत सहजिया व कामूकों को रासलीला पढ़ने के लिए नहीं कहा गया है। जो लोग अनर्थ में मग्न हैं,**

काम के भ्रम में हैं, उनके लिए भागवत् का रस नहीं है। "यदि हरिस्मरणे सरसं मनः, यदि विलास—कलासु कुतूहलं" तो गीत गोविन्द पढ़ो, नहीं तो माया के स्मरण से भोगमय इन्द्रियोंके वशीभूत होकर जयदेव के वर्णित अप्राकृत रसके आस्वादन में असमर्थ होने से प्राकृत सहजिया हो जाओगे।

मैं कहता हूँ—रासलीला शुरू करने के बदले में अनर्थ रहते अपराध छोड़ कर श्री हरिनाम करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध न होने से रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट और लीला की स्फूर्ति नहीं होती है। अनर्थ युक्त अवस्था पहलेही रासलीलानहीं हैं।

## शास्त्र प्रमाण को छिपाकर सहजियायों का वैष्णव साजने की अपचेष्टा।

भाई सहजिया! तुम सोचते हो-तुम्हारी तरह प्राकृत सहजिया गण ही वैष्णव है (एवं) सहजिया को हरि विमुख कहने से शुद्ध भक्तों का अपराध होता है। 'अर्च्चे विष्णौ शिलाधीः यस्यात्य बुद्धिः कुणपे' नेषां ममाहमितिधीः "स्व-शृगाल भक्ष्ये" प्रभृति श्लोकों का अर्थ भक्त गण न करें, तो तुम लोगों को ठगाकर भक्त सजकर आदर पा सकते हो। तुम कहते हो कि तुलसी के पत्ते में छोटे बड़े का भेद नहीं है, शुद्ध—वैष्णव, अवैष्णव, वैष्णव—विद्वेषी, भक्तों के गुप्त शत्रु, भक्त के नाम पर कलंक, मायावादी, अभिनयकारी कपट—वैष्णव—सभी एक हैं।

## सहजिया गण समाज की दृष्टि से घृणित हैं, यहां तक कि उन लोगों का मुंह देखना भी पाप है।

हम लोग जानते हैं, तुम्हारी ऐसी शत्रुता करने के उद्देश्य में सहजियाओं को वैष्णव सोच कर, हरि गुरू वैष्णव को मनुष्यकी दृष्टी में घृणित करना तुम्हें उचित नहीं है। तुम साधारण जीवों की आंखों में पहले ही धूल झौंक सकते हो, सत्य है; लेकिन भगवान् व शुद्ध भक्त को कब तक ठग सकते हो? तुम्हारे हृदय का भाव और असाधु वृत्ति उन लोगों को अपरिज्ञात नहीं है। सीधी तरह से प्राकृत सहजिया मत को छोड़ दो। भगवान पर विश्वास करो। उच्छृंखल कपट प्रेम चेष्टा दिखने पर श्रुति, स्मृति, पुराण, पंचरात्र विधि, छोड़ने से ही तुम्हारे उत्पात से भक्त गण ठहर नहीं सकेंगे। सहजिया गणों के पाप करने पर उन लोगोंके मुख दर्शन करनेसेधार्मिक अभक्तगणको भी पाप होता हैं भक्तों का भी अपराध होता है। मरनेके बाद सहजियाओं को सारे पापों की शास्ति मिलती है। इस जगत्में(लोकसमाजमें)भीलोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसेदेखते हैं। उन लोगों को अच्छे रास्ते पर लाने के लिए चेष्टा करने वाले शुभाकांक्षीयोंकोवे शत्रु समझते हैं उन लोगोंके लिये पुण्यमय संसार में कोई आदर नहीं हैं, वैध धर्म की अमर्यादा करना ही वे लोग भक्ति कहकर समझते हैं। मूर्खता और विशृंखलता को ही अनुराग का मार्ग सहजियागण सोचते हैं। भक्तों का शत्रु कहकर सहजियायों के प्रति भगवान् नाराज हैं।

# सीतानाथ बाबू के अप्राकृत में प्राकृत बुद्धि के हेतु और दल वृद्धि के लिये सहजिया मत में प्रवेश हेतु आक्षेप।

भाई सहजिया! तुम मन में सोचते हो—विष्णु कलेवर, श्री नाम को, श्री कृष्ण का श्री अङ्ग, श्रीमूर्ति को प्राकृत सोचने से भी कुछ कुछ सुफल होता है। लेकिन हम लोग कहते हैं कि कुछ भी मंगल लाभ नहीं होता है—लाभ के बीच में केवल अपराध मात्र लाभ होता है। भाई! विपथगामी तुम्हारे दल के लोगोंको बढ़ानेके लिये तुम सहजिया मतको क्यों ग्रहण किया हैं? क्योंकि पीछे लोग कमती हो जांय, शुद्ध भक्ति की बात न समझ कर पीछे तुमको छोड़ जांय, इसी डर से क्या भाई! कृष्ण के नित्य सौन्दर्य और मधुरिमा को भूल करके सहजिया मतमें प्रवेश करना चाहिये, सहजियागण इन्द्रियतर्पणके कर या महसूल स्वरूप में तुमको जो घूस दिया है, तुमको वैष्णव कहकर स्वीकार किया है तुम्हारी क्रमपंथामें कांटलगाया हैं उसी में तुम धन्य हुये हो, वृषभानु नन्दिनी की निर्मल सेवा छोड़कर, प्राकृत रस गाने में, मत्त हुए हो, उन लोगों की वाध्य—बाधकता तुम में इतनी विशेष क्यों हुई है।

## सीतानाथ बाबूके संग दोष से सहजिया मत-ग्रहण और शुद्ध भक्ति का परित्याग।

सहजिया गण देहारामी, द्रविणारामी, जनता रामी, लोभा रामी, पाषन्डारामी हैं। भाई! विपथगामी तुम को क्यों सहजिया गण 'भूल भुलैयाके' (उनके) बीचमें घुसाया है, और गोलक धंधा में गिरा दिया है। तुम ने क्यों तुम्हारे निजी अप्राकृत स्वरूप को प्राकृत सहजिया कहकर सनाख्त किया है? शुद्ध भक्तों के विरोधी

क्यों समझे ? प्राकृत-सहजिया के सेवा फल से, ऐश्वर्य से, लोग-बल,से मोहिनी शक्तिसे क्यों तुम मूढ़ हुयेहो ? प्रतिष्ठा आकर क्यों तुम को माधवेन्द्र पुरी के निर्म्मल प्रेम में जंजाल ले आयी ? प्राकृत भोग को तुमने अप्राकृत क्यों कहा ? स्वरूप दामोदर के प्रेम भक्ति को भूलकर तुमने मायावाद को प्रेम क्यों सोचा ? प्रतिष्ठाशार के वशवर्त्ती होकर कपट को प्रेमिक क्यों कहा ? तुमने क्यों जड़ भूत-प्रेत वाद लेकर श्रीरूप के उपदेशामृत को छोड़ दिया ? जड़ जगत् में प्राकृत सहजियाओं का बल (शक्ति) अधिक है, विशेषतः कलिकाल में हरिकथा के छल से भी कलि अज्ञात भाव से प्रवेश करते हैं। भाई सहजिया ! तुम को दूर से ही दण्डवत ! दया करके तुम जिस विषय के लोलुप होकर नित्यकाल के लिये शुद्ध भक्त गण को छोड़े हो, वह कृष्ण के अभाव के दया का परिचय है । एकादश के भिक्षुकों के गाने में से हमें याद आया यह श्लोक है।

*"नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।*
*येन नीतो दशामेतां निर्व्वेदश्चात्मनः प्लवः।"*

(भा० ११।२३।२८)

—जगत्गुरू ॐ विष्णुपाद श्रील प्रभुपाद

# साउड़ी के भक्ति सम्प्रदाय

## श्री गौराङ्ग सुन्दर के बाद (अप्रगट के बाद) गौड़ीय नाम-धारी गणों की अपचेष्टा

श्री गौरांग सुन्दर के अप्रकट काल के "अव्यवहित" बाद से ही हम लोग एक प्राकृत विषयोन्मुख **"भाक्त सम्प्रदाय"** का लक्ष्य कर रहे हैं। व लोग श्रीनिवास आचार्य प्रभु एवं गोस्वामी गणों के मत के विरुद्ध अप्राकृत हरि भजन को प्राकृत विषय समझने लगे हैं। वे लोग श्रीमन्महाप्रभु, श्रीरूप गोस्वामी के प्रत्येक उपदेश की अवहेलना किया करते हैं। श्री गुरु गौरांग के अवज्ञा करके नामापराध संचयपूर्वक अपराधी हो पड़ते हैं।

## 'विक्रीड़ितं' और 'अनुग्रहाय श्लोक दोनों के अछिला से प्राकृत—सहजिया गणों की कामूकता।

अपराधी गण यह विश्वास करते हैं कि 'विक्रीडितं व्रज बधुभिः' और 'अनुग्रहाय भक्तानां' श्लोक श्रीगुरुगौरांग के विरोधी हैं। वे लोग कहते हैं कि-काम-रोग-ग्रस्थ मानव कपट श्रद्धा दिखा कर हरिलीला श्रवण व कीर्तन करने से ही हृदय रोग के हाथ से मुक्त होगा। और भी कहते हैं कि कामासक्त व्यक्ति के नाम में रूप गुण लीला की स्फुर्ती होते ही मुक्त होने के बदले में, नामादिको जड़ समझनेसे काम दूर ही जायगा यह कहना वाहुल्य है श्रीनामचिन् स्वरूप है। उन्हें अचित् बुद्धि करके अवज्ञापूर्वक बना वटी भावसे कृष्ण लीला श्रवण को साधन ज्ञान करने से वह जड़ का भजन हो जायगा। "हृद्रोगमाश्वपहिणोत्यचिरेणधीर;" इस श्लोक को कदर्थ करने पर, श्री गौरांग की अवज्ञा एवं श्रीरूप

गुरूकी अमर्य्यादा करके साधन और भावावस्थाद्वय को अस्वीकार करने से कोई सुफल नहीं होगा। "श्रद्धान्वित" शब्द की उपेक्षा करके यदि कोई साधन भक्ति क्रमों का त्याग करते हैं एवं जात-रति होने के पूर्व ही जड़ बुद्धि सेवा संकल्पित हों, तो "श्रद्धान्वित" शब्द को अच्छादन करना होता है। 'अनुग्रहाय' श्लोक के अर्थ को विपर्य्यय करके चिन्मय सेवनोपयोगी देह लाभ के पूर्व ही यदि यह जड़ लोभ मय दैहिक इन्द्रिय द्वारा वस्त्र हरणादि कार्य व अष्टकाल नित्य सेवा में तत्पर हों, तो विशृंखलता के अलावा अन्य उपकारिता को स्वयं के लिये जगत् नहीं समझेंगे।

## साधन क्रमपथ में (मार्ग में) जात रति-व्यक्ति के पक्ष में ही रासलीला आलोच्य

अभक्ति का जो दूषित बीज बहुत पूर्व समय में ही पशु-मति जीवों के हृदय में प्रोथित हुआ था, उसी दूषित बीज और जड़ीय धारणा-रूप-वृत्त को श्री गौरांग सुन्दर के निजी व्यक्ति पतित-पावन श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर ने समूल ही उखाड़ दिया है। उनके कृपा पात्र गणों के बीच में ही श्री गौरांग प्रदर्शित क्रम पंथा एवं भक्ति के अवस्थात्रय नाम रस—भजन देदीप्यमान हैं, अर्थात् साधन भक्ति-काल में साधक कपटता क्रम से अपने को जात-रति व लब्ध रस नहीं सोचते हैं। फल प्राप्ति के पूर्व ही 'रस' नामक फल लाभ हुआ है, ऐसे भ्रम में पतित नहीं होते हैं। पतित पावन श्री मत् परम हंस बाबा जी महाशय एवं श्री मद्भक्ति विनोद ठाकुर साधन भक्ति में अवस्थित व्यक्ति गण को कपटता ग्रहण करके रति आभास—दोष में पतित होने नहीं देते हैं।

**श्रील भक्ति विनोद ठाकुर के मत —नाम भजन ही, रस भजन। परन्तु साउड़ी प्राकृत सहजियागण नाम भजन और रस भजन को पृथक पृथक ज्ञान करने से उन लोगों के गुरुद्रोहिता मत का खंडन।**

जो लोग निर्दय होकर माया बद्ध जीव के क्रम पंथा छुड़ा कर नाम को रस से अलग बुद्धि करके जड़ रस को साधनांग समझते हैं, वे लोग शुद्ध भक्ति को उन्मादन-मात्र करते हैं। 'न प्रेम गन्धोऽस्ति" श्लोक को आवरन करके लोक वंचना—रूप कुवृत्ति-ताड़ना को प्रबल कर उन लोगों की वैसी चेष्टा को हम लोग समादर नहीं कर सके। हम लोग भक्ति की बाधिका वैसा बंचना मूल में उदित कृपा को अनुमोदन करके चित् स्वरूप नाम के पास अपराधी होने के लिए इच्छा नहीं करते हैं। "कृष्ण नाम कीर्तन को नाम—रस के सहित भेद ज्ञान करके अप्राकृत नामोच्चारण में नाम रस लाभ नहीं हो सकता है।

ऐसे रूपमें कुमतों का समर्थन नहीं करते हैं एवं श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर के प्रकाशित भजन—प्रणाली को कलंकित करके पापाचरण—मानस में अजात—रति किसी भी व्यक्ति को वन्नावटी भाव से रस शिक्षा देने के लिए पक्षपाती नहीं है। जो लोग अलग अलग भाव से नामोच्चारण एवं रस—भजन उच्चारण करते हैं वेही लोग नाम तथा रस में भेद किया करते हैं।

**श्रीनाम—भजन से ही रूप—गुण—लीला की स्फूर्ति अनधिकारी के लिये मन में भी रासलीला आचरणीय नहीं है।**

श्री महाप्रभु कहते हैं—सर्वदा ही हरि कीर्तन करो, उसी से ही श्री नाम रूप गुण और लीला जीव के चित्त में

विकास लाभ करेगा। मायिक भेद बुद्धि द्वारा पृथक रूपसे बनावटी रूपोच्चारण गुनोच्चारण लीलोच्चारण नहीं करना। करने से नाम के साथ रूप-गुण का भेद होकर मायिकधारणा होगी एवं एकान्त भावसे नामाश्रय नकरके नाम-रस को नाम के साथ भिन्न ज्ञानसे स्वतन्त्र रस-सेवा उपदेश देने के लिये वाध्य होंगे। श्री भागवत-पद्य में 'आशु' शब्द एवं 'अचिरेण' शब्द द्वारा श्री गौर-कथित 'साधन' और 'भावावस्था'-दोनों ही विनष्ट नहीं हुये हैं। 'आशु' एवं 'अचिरेण' के द्वारा कैसी अवस्था दोनों का उपदेश है।

## अतिवाड़ी, बाउलीया और सहजियायों की रासलीला आलोचना से हृदय रोग के वृद्धि हेतु अधःपतन।

ठाकुर महाशय को कथित "अपनी भजन की बात जहां तहां पर नहीं कहनी चाहिये। इस गुरू वाक्यको लंघन करके प्राकृत सहजिया—सम्प्रदाय अपने बनावटी (कृत्रिम) प्रेम-चेष्टा-समूह के द्वारा अनभिज्ञ, अभक्त समाज में 'भक्त' कहकर परिचय लाभ करते हैं।

पारकीय रस कथा को लेकर 'चेंगडार दल' को (लोफरों के झुंड)को जब उच्छ्वास उपस्थित हुआ था, उसेसाम्प्रदायिक इतिहासों से हम लोग जान सकते हैं, श्रीजीव प्रभु विशृंखलता निवारणार्थ उपयुक्त शासन दण्ड ग्रहण करने के लिये वाध्य हुये थे। अति वाड़ि श्रीमान् रूप कविराज की कथा बाउलिया मुकुन्ददास जी की कथा एवं वंचित सहजिया-सम्प्रदाय की कथा को शुद्ध भक्तगण कभी भी आदर नहीं करते हैं। जब अप्राकृत कृष्ण-लीला रस में महा भागवत् उन्मत्त होते हैं, तभी व्रजंगना गणों का विक्रीड़न संदेश सुनकर एवं वर्णन करके जीव हृदय-रोग के हाथ से परि-मुक्त होते हैं। अश्रद्धासे व अजात—रति अवस्था में (असमय) में श्रवण—कीर्तन से हृदय का रोग वृद्धि होता है।

—श्रील प्रभूपाद

# साउड़ी का ईंचोड़े पाका सहजिया-सम्प्रदाय

हम सबों ने साउड़ी अपसम्प्रदाय के दो बेनामी पत्रों का समालोचना किया है। हम सबों के समालोचना पढ़कर सब सज्जनों ने ही श्री गौड़ीय वेदान्त समिति के प्रचार की बहुत ही प्रशंसा करके पत्र दिये हैं। परन्तु दुःख का विषय है कि चरित्र हीन असत्-प्रकृति रजस्तमोगुण ताड़ित धर्मध्वजी अकाल कुस्माण्ड सब अत्यधिक उत्तेजित हुये हैं। श्रीमद्भागवत हम लोगों को इस विषय पर निर्देश दे रहे हैं—"तेषां हि प्रशमो-दण्डः पशुनां लगुड़ो यथा।"

धर्म के नाम पर अधर्म के चरम सीमा पर उपनीत एक प्राकृत ग्राम्य वर्तावाहक के कई एक खंड हम सबों को देखने में आया है। यह पत्र सर्वतोभावे अपाठ्य (पढ़ने योग्य नहीं है)। इसके सम्पादक प्रभृति लेखक गणों को किसी प्रकार भाषा बोध तो दूर रहा वर्ण शुद्धि ज्ञान का भी विशेष अभाव है। उसी पत्रिका के प्रायः प्रत्येक पृष्ठ में ही वैसी ही असंख्य भूल प्रदर्शन कराकर हम लोग एक तालिका छपवा देंगे। इसके अलावा पाठक वर्ग की अधगति के लिये गुरू परम्परा शून्य अथवा असद्गुरू वर्गों की तालिका युक्त अपसम्प्रदाय की क्रिया कलाप, आचार विचार, युक्ति—तर्क और सिद्धान्त समूहों की समालोचना करके

निम्नलिखित कई एक प्रबन्ध पाषण्ड—दलनोद्देश्य से प्रकाश करेंगे।

१—अपदेवता का उपद्रव निवारण।
२—माउड़ी के प्रमोद—कानन में रासलीला की बौछारें।
३—जलजन्तु राय या भाट की भांड़ाभि।
४—पंचानन तेली का विष्णु-प्रिया भजन।
५—शम्भु-निशुम्भु वध।
६—माउड़ी शाला के भीत में गलद।
७—गुरू परम्परा पद्धति इत्यादि और भी दूसरे प्रबन्ध।

# नवीन अपसम्प्रदाय की तालिका

वर्तमान समय में कई एक अप-सम्प्रदाय उत्भव हुये हैं। हम लोग उनकी सारी कथाओं का स्पष्ट रूप से आलोचना करेंगे। इसमें दुर्भाग्य वशतः किसी का क्रिया कलाप और जीवन वृतान्तों के प्रति कटाक्ष पात होना बहुत ही सम्भव है। तत्रापि हम लोग उसमें भी विरत नहीं होंगे। संक्षेप में पंचानन तेली का नवीन सहजिया मत, १ गुरू भोगी सम्प्रदाय, २ गुरू त्यागी सम्प्रदाय, ३ कर्ताभाजा सम्प्रदाय, ४ गोष्ठिभाजा सम्प्रदाय, ५ भजन खाजा सम्प्रदाय, ६ जाति भाजा सम्प्रदाय, ७ नशों में भजा हुआ सम्प्रदाय, ८ जितना मत उतना पथ सम्प्रदाय, ९ भान कपट सर्वस्व सम्प्रदाय, १० वामन वोष्टम सम्प्रदाय, ११ भव धुरे सम्प्रदाय, १२ संन्यासी सम्प्रदाय १३ धर्म उद्धान्तु सम्प्रदाय, १४ आखिर में व्यवस्था कारी सम्प्रदाय, प्रभृति बहुत से आधुनिक सम्प्रदाय की बातें हम सब आलोचना करेंगे। उक्त सम्प्रदाय के अलावा और भी कई एक प्राचीन अपसम्प्रदाय धर्म-जगत में आधिपत्य विस्तार करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन लोगों की शिक्षा भी नितान्त ही कम नहीं हैं। उन लोगों के साथ साथ जनबल, धन बल, राजनैतिक बल, सामाजिक बल प्रभृति कलिकाल के प्रबल प्रभाव हेतु परिमाण में (फल सरूप) अधिक लाभ किया

है। इसे छोड़कर भी ब्रह्मत्व—प्राप्त होना व ब्रह्म में सामिल होना कर्म ज्ञानादि समस्त उपासना के एक ही फल है, नारी जाति के हितैषण (हितैषी) एवं "घर—पागल" सम्प्रदाय लेकर बहुत सी सम्प्रदाय चल रही हैं।

हम लोग श्रील भक्ति विनोद ठाकुर के आदर्श और "श्री कृष्णद्वैपायन"—व्यास देव के "धर्म प्रोज्झितकैतव" का आदर्श ग्रहण करके वेद—वेदान्त उपनिषद, श्रीमद्भागवत, पुराण, महाभारत प्रभृति सर्व्ववादि सम्मत शास्त्र समूहों से प्रमाण युक्ति के द्वारा पूर्वोक्त छल, धर्म अपधर्म समूहों का हेयत्व और अनुपादेयता प्रदर्शन करायेंगे। ये अपसम्प्रदाय सर्वतःभाव से उन्मादित न होने से देशों का ठीक ठीक मंगल नहीं होगा। हम सब जनसाधारण को इस विषय में जत्नवान होना एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति को सर्वतोभाव से सहानुभूति प्रदर्शन करने के लिये अनुरोध करते हैं।

उक्त अपसम्प्रदाय सबों के विरुद्ध में शास्त्र युक्ति पूर्ण प्रबन्धादि भेजने से उसे भी सादर ग्रहण करेंगे।

# बाउल मत के विचार

## बाउलों के संबन्ध में पांच प्रश्न

काकिनीया निवासी श्रीयुक्त राधिकानाथ राय महाशय हम सबों को निम्नलिखित पाँच प्रश्न लिख कर भेजे हैं। हमलोग यथासाध्य निचे प्रत्युत्तर के साथ लिख रहे हैं—

(१) वर्तमान बाउल धर्म शास्त्रानुमोदित है या नहीं, और इसके प्रवर्तक कौन है ?

(२) स्वकीय और परकीय साधन प्रणाली कैसा है ? रसाश्रय और भावाश्रय किस को कहते हैं ?

(३) राय रामानन्द, स्वरूप दामोदर, श्री रुपगोस्वामी, जयदेव विद्यापति, बिल्वमंगल मीराबाई, पद्मादेवी, लक्ष्मीबाई, चिन्तामणि प्रभृति महाजन गण इस तरह आश्रय अवलम्बन और लीलानुकरण करके सिद्ध हुए थे या नहीं ?

(४) शास्त्र के कीसी कीसी अंश में समझने को दोष से यदि इस तरह के धर्म प्रवर्त्तित हुए हैं। तब उसी अंश का ठीक अर्थ क्या है ?

(५) स्वरूप दामोदर और मिराबाई की इस पंथ विषयक कड़चार के सत्यता सम्बन्ध में आप लोगों के क्या विचार है ?

### बाउल-मत सर्व शास्त्र विरुद्ध है।

बाउल—धर्म जिस आकार से वर्तमान समयमें दृष्टिगोचर होते है, वह सर्व शास्त्र विरुद्ध है। शास्त्र में वैधी और रागानुग दो ही प्रकार के भक्ति का उपदेश देखने को मिलते हैं । बाउल

लोग किसी प्रकारके वैधी भक्तिका आचरण नहीं करते हैं। रागानुगा भक्ति के बहाने से नानाविध असदाचरण किया करते हैं। वास्तव में रागानुगा भक्ति अतिश्य पवित्र है। उसमें लेस मात्र भी जड़ीय व्यापार नहीं है। आत्मा के अप्राकृत रस और भाव अवलम्बन पूर्वक उस भक्ति की अनुष्ठित होता है। इस तत्व का विवरण कभी कभी प्रकाशन होता रहेगा। बाउलों की असत् प्रथा बहुत दिनों से प्रचलित है। उस प्रथा के प्रवर्तक कौन है—उसे नहीं कह सकते हैं। बाउल लोग कभी श्री सनातन गोस्वामी और कभी श्री वीरभद्र गोस्वामी प्रभु को उनके प्रवर्त्तक कहकर प्रचार करते हैं। वास्तव में उन्होंने कभी भी बाउलों को कुप्रथा की शिक्षा नहीं दिये हैं।

**बाउल लोग रायरामानन्द प्रभृतियों के श्रीचरण में अपराधी हैं।**

दूसरे प्रश्न का उत्तर—

क्यों न बहुत शीघ्र ही स्वकीय परकीया तत्त्व विचार अवलम्बन पूर्वक एक सुबृहत् प्रबन्ध प्रकाशित होगा।

तीसरे प्रश्न का उत्तर—

हम लोग केवल यह मात्र कह सकते हैंकि—राय रामानन्द प्रभृति महाजन गण विशुद्ध राग मार्ग में भजन किये हैं। कभी बाउल मत के रसाश्रय, भावाश्रयादि नहीं किये हैं। बाउल लोग नाना तरह के बहाने से उनके सम्बन्ध में कुछ मिथ्या आख्यायिका रचना करके उनके पास अपराधी हुया करते हैं।

**बाउल लोग कु-प्रवृति-शाली और इन्द्रिय-पारायण हैं।**

चतुर्थ प्रश्न का उत्तर—

यह मात्र कह सकते हैं कि—बाउल मत शास्त्र सिद्ध नहीं हैं। कुछ कुप्रवृतिशाली इन्द्रिय परायण लोग शास्त्र के कोई किसी

स्थानों के कदर्थ करके उन लोगों के सुखजनक कई एक कल्पित मत का सृष्टि किया है। बाउल लोग शास्त्र के कोई विषेश वाक्य के ऊपर निर्भर नहीं करते, लेकिन प्रयोजन होने से चरितामृत के किसी किसी पद्यांश को लेकर निजी मत को प्रतिष्ठा करते हैं। उसी अंश को यदि हम सबों के पास दिखाते हैं, तो हम सब विशुद्धार्थ प्रचार कर सकते हैं।

## बाउलों के कड़चाद्वय घृणित और स्त्रियों को कुमार्ग में लाने के लिए कल्पित।

पंचम प्रश्न का उत्तर—

यह है कि—जो दोनों कड़चा राय महाशय ने भेजा है वह नितान्त घृणित है। बाउल लोग वह सब कड़चा रचना करके दुर्बल हृदय मूर्ख पुरुष और स्त्री लोगों को कुमार्ग में ले जाते हैं। हम लोग स्वरुप दामोदर के कड़चा अनुसंधान करते करते उसी तरह के बहुत से बनावटी (कृत्रिम) पुस्तक प्राप्त हुये हैं। वह सब हेय (घृणित है) वास्तव में स्वरुप-दामोदर के कड़चा नहीं मिलता है।

—जगद्गुरू श्रील ठाकुर भक्ति विनोद

# भेक-धारण

## आश्रम-चतुष्ठय और उनके लक्षण

कोई महात्मा वैष्णव इस विषय को लेकर हम सबों को कई एक प्रश्न किये हैं। उन प्रश्नों को इस स्थान पर न लिख कर केवल उत्तर प्रदान करने को प्रवृत्त हुए हैं।

'भेक'—शब्द से भिक्षु आदि आश्रम को उद्देश्य करते हैं। मानव के आश्रम और शास्त्र युक्ति से चार ही है मात्र—गृहस्थाश्रम, ब्रह्मचर्य्याश्रम, वाणप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम। विज्ञान के दृष्टि से देखिये व शास्त्र के दृष्टि से ही देखिये तो उक्त चार आश्रम के अलावा और आश्रम मानव जाति के लिए संभव नहीं है। **आश्रम के संख्या भी लघु नहीं कर सकते हैं।** इन सब आश्रम-तत्व का विचार "श्री श्री चैतन्य शिक्षामृत"—ग्रन्थ में [२य वृष्टि, ४र्थ धारा में] सम्पूर्णरूप से लक्षित होगा।

सम्प्रति संक्षेपमें कहकर प्राकृत प्रस्ताव ग्रहण करेंगे। विवाह करके सयाजबद्ध व्यक्ति ही गृहस्थ आश्रममें स्थित हैं। स्त्रीको परित्याग करके निःसंग भ्रमणकारी व्यक्तिगण ही संन्यासाश्रमी हैं। ब्रह्मचर्य्य और वाणप्रस्थ ये लोग मध्यवती हैं। ब्रह्मचारीगण दार परिग्रह करके गृहस्थ भी हो सकते हैं, अथवा एकदम सन्यास भी ग्रहणकर सकते हैं वाणाप्रस्थ आश्रम में स्त्री कीसी किसी स्थानपर साथ रह सकते हैं। **सन्यास आश्रम का नाम ही भिक्षु-आश्रम है।** संन्यासीव्यक्ति फिर कभी इस जीवन भर में स्त्री संग नहीं कर सकते हैं। वह भिक्षा के द्वारा ही जीवन यात्रा निर्वाह करेंगे।

# भेकधारी गणों का आश्रय निरूपण

अब पूछने की बात यह है, कि भेखधारी वैष्णव गण किस आश्रम में अवस्थिति करते हैं ?

हम लोग जितना शास्त्र और श्री महाप्रभु के उपदेश आलोचना किये हैं, उससे यहां तक स्थिर किया है कि निःसंग वैष्णवगण को भिक्षुकों के आश्रम स्वीकार किया है। स्त्री संग जब उनके लिये बिलकुल ही निषिद्ध है, तब उनके आश्रम के नाम सन्यास है। **सन्यास का चिन्ह कोपीन।**

उसे वहलोग ग्रहण करते हैं। अतएव वह लोग भिक्षुओं के आश्रम में अवस्थित होकर वैष्णवधर्म का अनुशोलन करते हैं। **भेक-धारण व सन्यास में कौन से वर्ण का अधिकार हैं।** इस स्थान में विचार यह है कि वैष्णवों के भेकधारी व्यक्ति सब वर्णोंमें से ही चतुर्थाश्रम को ग्रहण करते हैं—यह शास्त्र और युक्ति सिद्ध है या नहीं ? हम सबों का सिद्धान्त यह है कि शास्त्र मत से ब्राह्मण वर्ण के अलावा कोई भी संन्यासाश्रम का अधिकारी नहीं हैं। शास्त्र वाक्य सर्वदा ही निर्म्मल है। **वेद सिद्ध शास्त्र में भ्रम प्रमाद नहीं है। शास्त्र में ब्राह्मण वर्णका जो लक्षण वर्णन किये हैं, वही लक्षण यदि किसी पुरुष नहीं हैं, तो उसका संन्यास ग्रहण करना वृथा है।** यथा शम (अन्तरेन्द्रिय का वशीभूता) दम (वाह्येन्द्रियका दमन) इत्यादि गुण सब न रहने से संन्यासाश्रम-गत (पिछले) पुरुष अतिशीघ्र ही लाम्पट्य और भोग वंच्छा के द्वारा उक्त पवित्राश्रम का कलंक स्वरूप हो उठेगा।

अतएव ब्राह्मण के अलावा और किसी का भी संन्यासाश्रम के अधिकार नहीं है।

## ब्राम्हणेत्व वर्णमें ब्राह्मण का लक्षण रहने से सन्यास का अधिकारी हैं।

कलिकाल में स्वभाव से ही वर्ण-निरूपण-प्रथा सम्पूर्ण रूप से स्थगित हुआ है। अब तो केवल जन्म के द्वारा ही ब्राह्मणत्व है। इस स्थान पर ब्राह्मण जाति से संन्यासाश्रम के अधिकारी मिलना दुर्लभ है। परन्तु स्वभाव—गति के अन्याय वर्ण से उक्त आश्रम में बहुत से अधिकारी मिलते हैं। इन निगुढ़ शास्त्र विचार से श्रीश्री महाप्रभु श्री रघुनाथदासादि महाजन गणों को भिक्षुयों के आश्रम ग्रहण के लिए अनुमति प्रदान किये थे।

## अनधिकारी के लिये भेक व संन्यास निषिद्ध है।

उसी समय से इस भेक धारण का पद्धति प्रचलित हुई है। शास्त्र व पद्धतिका कोई दोष नहीं है। जो लोग पहले उस पद्धति को प्रचलित किये थे, उनका भी दोष नहीं है। लेकिन सब ही काल का दोष है। जन्म ही केवल ब्राह्मणत्व प्राप्त व्यक्ति के लिए संन्यास जिस तरह गर्हित अनाधिकारी दूसरे वर्ण के नरगण के लिये भी भेक धारण तद्रुप गर्हित है,—इस में सन्देह नहीं है। अधिकार लाभ करके सब ही व्यक्ति उस आश्रम को ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु अधिकार न मिलने तक सब ही को गृहस्थ धर्म में रहना उनका कर्तव्य है।

## अविवाहित गृही का लक्षण

कौन कौन विषय से भेक धारण का अधिकार होता है,

उसे विचार करना कर्त्तव्य है। मानव मात्र ही को गृहस्थ होने का अधिकार है। गृहस्थ होने से स्त्री परिग्रह किया जा सकता है, लेकिन स्त्री परिग्रह के सम्बन्ध में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ के प्रयोजनीता भी है। स्त्री परिग्रह न करके भी अक्षम व्यक्तिगण अन्यान्य (दुसरे) गृहस्थों के साहार्य्य से गृहस्थ हो सकते हैं।

## भेक-धारण व संन्यास लाभ के अधिकार निर्णय

भेक-धारण व संन्यास ग्रहण के पूर्व ही जो कईएक अवस्था का उदय होना आवश्यक हैं, उसे कह रहा हूँ।

१—शम, दम, तितिक्षा और वैराग्य-इन चारों के उदय होने से भिक्षुकों के आश्रम का अधिकार होता है। तितिक्षा (दुःखादि सहने का अभ्यास) और वैराग्य (सब नश्वर वस्तु में अवस्तु ज्ञान) यही दो सन्यासी का प्रधान धर्म है।

२—नश्वर वस्तु और अविनश्वर वस्तु को पृथक (अलग) करके जानने की प्रयोजन।

३—अनिश्वर वस्तु लाभका सम्यक् उपाय लाभ।

इन तीन गुणोंसे जिस शरीरका उदय होता है, वही शरीर सन्यास लिंग ग्रहण करने का अधिकारी है।

## संन्यास और वैष्णव-संन्यास का पार्थक्य

साधारणतः संन्यास-धर्म से वैष्णव सन्यास का थोड़ा सा भेद है। सामान्य वाणिक संन्यासियों का शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य सदसत् ज्ञान और ब्रह्म लाभ का उपाय मात्र ही प्रयोजन है। वैष्णव संन्यासियों के केवल वह सब गुण रहने से ही भेक का अधिकार होता है, यह मत नहीं है। आदौ भगवद्विषयिणी श्रद्धा, तदन्तर (उसके बाद) साधु संग भजन और

अनर्थ निवृत्ति प्रभृति प्रक्रिया के द्वारा जब भागवती रति उदिता होता है, तब विरक्त कह कर एक धर्म वैष्णव को आश्रय करते है। उसे करने से वैष्णव को और निरर्थक कर्म्ममय गृहस्थाश्रम को अच्छा नहीं लगते है। जब वैष्णव अपने अभाव खर्व्व कर के मन से कोपीनादि धारण और भिक्षा द्वारा जीबन निर्वाह करते हैं। **उसी का नाम वैष्णवों का भेक कहते हैं।**

जो व्यक्ति सरलता पूर्वक भेक धारण करते हैं, वही ही जगत (संसार) के पूजनीय है। ऐसा भेक ग्रहण दो प्रकार हुआ करते हैं। कोई कोई व्यक्ति भवजनित (संसार जनित) विरिक्त लाभ करके किसी वैष्णव साधु के निकट भेक ग्रहण करते हैं। **कोई स्वयं उसी प्रकार लिंग द्वारा लिगिंत होकर विचरण करते रहते हैं।** श्रीश्री महाप्रभु के भेक अतिशय पवित्र पद्धति है। हम लोग श्रद्धावनत मस्तकके सहित उसी पद्धति को बरम्बार दण्डवत (नमस्कार) करते हैं।

## स्वयं भेक था संन्यास ग्रहण अवधि और दौरात्म्य विशेष है।

लेकिन दुर्भाग्य का विषय यह है कि ब्राह्मणों का संन्यास आश्रम के सदृश्य भेकाश्रम भी आज कल अत्यन्त दूषित हुये हैं। अधिकार विचार बिलकुल उठ गया है। जिस की भेक लेने की इच्छा हुई वही क्षणमात्र में ही मस्तक मुण्डन पूर्वक कौपीन धारणकर बैठते हैं! आज कल वैष्णव समाज में भेक सम्बन्ध के निम्नलिखित कई एक दौरात्म्य प्रचलित हुये हैं। समस्त सरल वैष्णव और श्री श्री महाप्रभु के यथार्थ कृपा पात्र साधुगण वे

सब दौरात्म्यों को अनुमोदन करना दूर रहा, उसे देखने से भी आंख हाथों के द्वारा आच्छादन करते हैं।

## भेक और संन्यास सम्बन्ध में वर्तमान दौरात्म्य का विचार

१—ग्रहस्थ वैष्णवों के बीच में बहुतों ने ही मस्तक मुण्डन और कौपान धारण करके ग्रहस्थ बाबाजी हुआ करते हैं। इससे अनर्थ और क्या है ? उन लोगों का ऐसा आश्रम-सांकर्य्यों प्रयाजन क्या है ? यदि विरक्त हुये हैं । तो प्राकृत प्रस्ताव से निःसंग भेक ग्रहण करिये। यदि विरक्त नहीं हुये हैं, तो ऐसे लिंग धारण के द्वारा क्या लाभ होगा ? केवल मात्र वैष्णव धर्म को मानव की दृष्टि में कलंकित किया जा रहा है। अवश्य ही पर-लोक में इसका फल भोगना पड़ेगा।

२—अखाड़ेधारी बाबाजी स्त्रीलोगों को सेविकारखना भी एकभयंकर अमंगल भजनप्रथा है। किसी किसी अखाड़ेमें बाबा जी पूर्वाश्रम के वनिता (स्त्री) सेविका रूप से अवस्थिति करती हैं। जिस अखाड़े में स्त्री लोग न रहने से नहीं चलता है उस अखाड़े में यथार्थ विरक्त पुरुष कभी भी नहीं रहेगा; देव सेवा और साधु सेवा के छल करके स्त्री सङ्ग करने के लिये केवल मात्र वैसा कार्य के मूली भूत तत्त्व है।

३—निःसंग वाबाजियों को स्त्रीलोभ, खाद्यलोभ, और सुखलोभ अत्यन्त वर्ज्जनीय है । किसी किसी निःसंग लिंगधारी वैरागियों का वैसा दौरात्म्य रहने से समस्त निःसंग पुरुष के प्रति वैष्णव जगत का अविश्वास हो जाता है। यथार्थ बात तो यह है, भागवती रति-जनित विरक्त न होते होते जो वैराग्य लिंग धारण

---

नोट-बंगदेश में अखाड़े उसे कहते हैं भेकधारी बाबाजी और महिला एकत्र रहते हैं।

करते है, वह अवश्य ही जगत के उत्पात और वैष्णव धर्म का कलंक स्वरूप हैं।

## अवैध भेक और संन्यास से वैष्णव धर्म का अपमानना और अधःपतन।

यथार्थ बात तो यह है, अविवेचना और खराब उद्देश्य ही इन सब दौरात्म्य जनक जननी है। भेक ग्रहण करने से पूर्व ही सर्व साधारण विशेष सतर्कता-सहकार से अपने अपने अधिकार परीक्षा करेंगे। भेक ग्रहण करनेसे भी तो नहीं होता है, 'भेक' 'यथाविधि' ग्रहण करने से सर्वार्थ सिद्धि होते हैं। अशास्त्रीय विधि भेक ग्रहण करने से निजि अधःपतन और वैष्णव-धर्म का अपमानना होता है।

## अधिकार—विचार करने के लिये ठाकुर के आवेदन।

हम लोग कृतांजलि पूर्वक संसार के निकट इस प्रकार के अवेदन करते हैं,—हे महोदय गण! अधिकार विचार पूर्वक कार्य करिये। अधिकार ही सर्व विषय का मूल है। भगवान कहते हैं—

*स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः।*
*विपर्ययस्तु दोषः स्वादुभयोरेष निश्चयः॥*
(भा० ११।२१।२)

अपने अपने अधिकार में जो निष्ठा है, वही गुण है। उसके विपरीत आचरण के नाम ही दोष है! अतएव अधिकार विचार न करके कोई कार्य नहीं करेंगे। जब तक विरक्त नहीं होते हैं, तब तक ग्रहस्थ धर्म पालन करते करते कृष्ण

भक्ति अनुशीलन करिये। विरक्त होने से ग्रह परित्याग पूर्वक विचरण करिये। एकादश स्कन्ध में भगवान कह रहे हैं।

*जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु।*
*वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः॥*
*ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढ़ निश्चयः।*
*जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन्॥*

(भा० ११।२०।२७–२८)

जब तक ग्रह परित्याग करने में अक्षम हैं, तब तक हम सबों के सिद्धान्त से जात श्रद्ध होकर सर्व कर्म फलमें निर्व्वेद लाभ करें, भगवान कहते हैं-सर्व कर्म को दुःखात्मक जानकरके और उन सबों के शेष फल को बुरा कहकर निन्दा करते करते, उन सबों को मेरे प्रतिश्रद्धालू होकर स्वीकार करें। एवं मुझे प्रीति पूर्वक भजन करें।

## भेकधारी व संन्यासी को अपने गृह में अवस्थान करना (रहना) निषिद्ध है।

हे साधुगण! यही गृहस्थ-वैष्णवों का लक्षण हैं। "कटिं कृता वनं व्रजेत्"—यही वैष्णवी तन्त्र से स्थिर होता है, भेक धारण करके (गृह मध्ये) घर में रहना वैष्णवों का लक्षण नहीं है। भेक धारण करके विचरण करते समय जो लक्षण है, उन भगवदुपदेश को दृष्टि करिये।

*"आज्ञायैवं गुणान दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान।"*

(भा० ११।११।३२)

## भेक धारी व संन्यासी का पारमहंस्य वैष्णवाश्रम

पुनश्च—*"सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेद विधि गोचरः।"*

(भा० ११।१८।२८)

वर्णाश्रम-धर्म में गुण दोष दृष्टि पूर्वक उसे परित्याग करके मुझे भजन करोगे, तब समस्त लिंग के सहित आश्रम सब को परित्याग करके विधि सत्रों के अतीत जो पारम हंस्य वैष्णवाश्रम है, उसी में विचरण करोगे। इस वाक्य के द्वारा वैष्णवाश्रम को पंचमाश्रम नहीं सोचना, जिस आश्रम में रहो, उसी में आसक्ति त्याग पूर्वक एवं उसी आश्रम के लिंग में निष्ठा छोड़ कर कृष्ण-भक्ति के द्वारा उत्तेजित होकर भक्तों के आचार स्वीकार करेंगे। इस विषय को बहुत से आलोचना पीछे होता रहेगा।

वैष्णव धर्म को पंक (कीच) से उद्धार करने के लिये सारा दौरात्म्य दूर करने की चेष्टा अवश्य ही करना पड़ेगा।

अपार करुणामय सर्वेश्वर श्री श्चीनन्दन हम सबों से जब जो कुछ कहावेंगे हम सब वही कहेंगे। वैष्णव चरणों में दण्डवत प्रणति पूर्वक आज निरस्त हुये।

—जगद्गुरू श्रील ठाकुर भक्ति विनोद

मुद्रकः— निरंजनसिंह चौधरी
ब्रजधाम प्रेस, वृन्दावन.